P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय दार्शनिक चिन्तन का जन मानस पर प्रभाव

कौशल किशोर गोठवाल
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बून्दी, राजस्थान, भारत

सारांश

भारतीय दार्शनिक चिन्तन का मूल स्रोत वेद है। वैदिक संहिताएं जो केवल धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं है अपितु समग्र ज्ञान राशि का भण्डार है। भारतीय दर्शन का उद्भव वैदिक रिचाओं के उन स्थलों पर हुआ जहां मूल तत्व और उसके आधार के साथ–साथ श्रष्ठा एवं उसकी श्रष्टी के विषय में भी जिज्ञासा प्रकट की गई है। भारतीय दर्शन का उद्भव जनमानस के मध्य से हुआ है और जनमानस ने भी भारतीय दर्शन को प्रेरित एवं प्रभावित किया है। यह मात्र एकपक्षीय प्रस्थान नहीं है अपितु द्विपक्षीय आदान–प्रदान का परस्पर स्वस्थ एवं सहकारी संबंध है। जनमानस ही दार्शनिक चिन्तन को आधार एवं ऊर्जा प्रदान करता है तथा दार्शनिक चिन्तन जनमानस के संकल्पों को ही विविध विकल्पों के रूप गुंफित करता है।

मुख्य शब्द : दार्शनिक चिन्तन, भारतीय जनमानस, वैदिक संहिताएं, धार्मिक ग्रन्थ।

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिन्तन विलक्षण है क्योंकि इसका उद्भव मानव की शाश्वत आध्यात्मिक अभीप्सा से हुआ है। असत् से सत् की और तम से ज्योति की और तथा मृत्यु से अमृत की और अग्रेसर होने की चिरन्तन मानवीय अभिलाषा भारतीय दर्शन की जननी रही है। भारतीय दर्शन मानव की उज उदात्त आकांक्षाओं को रेखांकित करता है, जो मात्र भौतिक अस्तित्व तक सीमित न रहकर उसे उच्चतर उद्देश्यों की और अभिप्रेरित करता है तथा सतत सम्बल प्रदान करता है।

जिस प्रकार भारतीय दार्शनिक चिन्तन ने जनमानस को प्रेरित एवं प्रभावित किया है, उसी प्रकार जनमानस ने भी दार्शनिक चिन्तन को उद्वेलित किया है। यह मात्र एकपक्षीय प्रस्थान नहीं है, अपितु द्विपक्षीय आदान–प्रदान का परस्पर स्वस्थ एवं सहकारी सम्बन्ध है। जनमानस ही दार्शनिक चिन्तन को आधार एवं ऊर्जा प्रदान करता है तथा दार्शनिक चिन्तन जनमानस के संकल्पों को हि विविध विकल्पों के रूप में गुम्फित करता है। प्रकृत शोध–पत्र के माध्यम से भारतीय दार्शनिक चिन्तन एवं उसमें अन्तर्निहित मूल मान्यताओं की जनमानस पर प्रभाव की दृष्टि से चर्चा की जायेगी। न कि दर्शनशास्त्र के सैद्धान्तिक पक्ष का विश्लेषण।

भारतीय दर्शन की विकास वृत्ति मात्र पुस्तकीय अथवा मस्तिष्कीय नहीं, वास्तविक एवं व्यावहारिक है। इसकी सत्ता स्फुर्ति एवं सर्वव्यापकता इसी से सुस्पष्ट होती है कि भारतीय जनजीवन सर्वथा दार्शनिक चिन्तन की धारा से ओत–प्रोत है। भारतीय चिन्तन पद्धति में जीवन एक निरुद्देश्य जैविक प्रक्रिया नहीं, अपितु एक सप्रयोजन एवं समग्र साधना है, जिसे निम्न लिखित वैदिक मंत्र के रूप में इस प्रकार मुखरित किया गया है।

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुतिष्ठत प्रतरता सखायः अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः
शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभिवाजान्।[1]

अर्थात् हे मित्रों! जीवन रूपी पथरीली नदी बह रही है। उठो, इसे पार करो। ज्यों अशिव संकल्प है, उन्हें इसी तीर पर छोड़कर शिव संकल्पों को साथ लेकर चलो।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन जीवन एवं मृत्यु दोनों को ही समान रूप से स्वीकार करता है, क्योंकि जीवन को मृत्यु से पृथक् रूप में नहीं समझा जा सकता। जीवन अर्धसत्य है, मृत्यु सत्य है किन्तु मात्र अपूर्ण सत्य है। पूर्ण सत्य तो अमृत्यु अर्थात् अमृतत्व है। अर्धसत्य एवं अपूर्ण सत्य के द्वारा पूर्ण सत्य तक (परमतत्व तक) पहुँचना ही भारतीय दार्शनिक चिन्तन का चरम लक्ष्य है। इसीलिये वेद में सभी मनुष्यों को (अमृत पुत्राः) कहा गया है।

शृण्वनतु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।[2]

भारतीय जनमानस जितने उल्लास से जन्म का उत्सव मनाता है,
उतनी ही सहजता से मृत्यु को एक सनातन सत्य के रूप में स्वीकार करता है।

मृत्यु के प्रति भारतीय जनमानस के स्वस्थ दृष्टिकोण को निम्नलिखित वैदिक मंत्र में देखा जा सकता है–

परम् मृत्यो अनु परेहि पन्थाम् यस्ते अन्य इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मेत शृण्वेत ते ब्रवीमि मा नः प्रजाः रीरिषो मोत वीरान्।।[3]

भारतीय जनमानस में मृत्यु के प्रति ऐसी अनवदय अवधारणा पुनर्जन्म में विश्वास के कारण है, जिसके अनुसार मृत्यु जीवन का अन्त नहीं, एक पड़ाव मात्र है।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन में मानव शरीर की जैसी उत्कृष्ट एवं आध्यात्मिक संकल्पना की गई है, वैसी अन्यतर दुर्लभ है। वैदिक वर्णनों में मानव शरीर को क्षेत्र, ब्रह्मपुरी, देवपुरी, दैवीवीणा, दैवीनाव, रथ और वस्त्र आदि रूपों में चित्रित किया गया है, जो शरीर की दिव्यता एवं महत्ता को सुचित करता है।

क्षेत्र

वेद में देह को क्षेत्र कहकर सम्बोधित किया गया है।

स्वेक्षेत्रे अनमीवा विराज।[4]

अर्थात् अपने क्षेत्र में अनामय होकर रहो।

देवपुरी : मानव शरीर दिव्य शक्तियों का आवास होने के कारण देवपुरी कहा गया है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानाम पुर्योयोध्या।
तस्याम् हिरण्यः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।। [5]

अर्थात् यह शरीर, जिसमें आठ चक्र और नौ द्वार (इन्द्रिय) हैं, देवपुरी अयोध्या है। इसके भीतर ज्योती से पूर्ण स्वर्ण का कोष (मस्तिष्क) है, जिसे स्वर्ग कहते हैं, मस्तिष्क ही घट या स्वर्ग है।

दैवीवीणा

यह शरीर एक दिव्य वीणा है, ज्यो इसे भली–भांती बजाना जानता है, उसकी वीणा के स्वर सुनने येाग्य होते हैं।

अथ इयम् दैवी वीणा भवती,
तदनुक्रतीरसौव मानुषी वीणा भवती। [6]

परवर्ती काल में मानुषी वाक की वंशी से तुलना और पौराणिक परीकल्पना में कृष्ण की मोहिजी मुरली की ध्वनी का आधार संभवतः दैवी वीणा ही रहा है।

रथ

भारतीय दार्शनिक चिन्तन में मानुषी देह को रथ रूप में भी व्याख्यायित किया गया है। प्रकृत वैदिक मंत्र में देह को रथ, इन्द्रियों को घोड़े और आत्मा को सुषारथी कहा गया है।

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र–तत्र कामयते सुषारभिः।[7]

वैदिक चिन्तन से प्रसृत ज्ञानगंगा को अजस्र स्त्रोतस्विनी बनाने का एवं भारतीय मनीषा को वैचारिक तथा तात्तिवक दृष्टि से मूर्धन्य शिखर पर पहुंचाने का श्रेय उपनिषद्वाङ्मय को है। उपनिषद् आस्तिक भारतीय चिन्तनधारा का उत्स है। ऋषिप्रज्ञा कि तपःपूत अन्तरदृष्टि से प्रसूत पावन, सत्य, सनातन और सार्वभौम संदेश उपनिषदों में समाहित हैं ज्यो आज भी भारतीय जनमानस में अनुस्यूत है। वैदिक सूक्तों में सन्निहित दार्शनिक संकेतों का विकास उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है।

अन्वीक्षा एवं अन्वेषण के जिस मार्ग का सूत्रपात वैदिक ऋषियों ने किया था, जीवन और जगत् के प्रति वही अनादि उत्कण्ठा उपनिषदों में भी अनेकशः मुखरित होती हुयी दिखाई देती है। यथा–

किम्कारणम् ब्रह्म कुतः स्म जाताः
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।।[8]

उपनिषदों में शिक्षा, नैतिकता, सदाचार एवं सद्गुणों के सम्बन्ध में प्रचुर प्रकाश डाला गया है, ज्यो ऋषि प्रोक्त होने से अतीव प्रभावी एवं प्रामाणिक है। तैतिरीय उपनिषद् की शिक्षावली में आचार्य द्वारा शिक्षार्थी को दिया गया संदेश आज भी विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त समारोह का एक अभिन्न अंग है, गार्गी, मैत्रेयी, नचिकेता, नारद और सनत् कुमार के संवाद आज भी भारतीय जनमानस में लोकप्रिय हैं। भौतिक सुख एवं सुविधाओं से अतितृप्त, किन्तु आत्मिक दृष्टि से सर्वथा अतृप्त पाश्चात्य देशों के निवासी भी आज उपनिषदों के अक्षय सन्देशों से प्रेरणा ले रहे हैं।

सत्यमेव जयते नानृतम्।[9]
ईशावास्यमिदम् सर्वम्।[10]

उपर्युक्त औपनिषदिक वचन दार्शनिक चिन्तन एवं जनमानस के मध्य गहन तथा सहज सम्बन्ध को ही सुचित करते हैं।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन का मूल मंत्र हैं.....(आत्मानम् विद्धि) भारतीय दर्शन का इतिहास आत्मा के अन्वेषण इतिहास है, भारतीय दर्शन की दृष्टि अन्तर्मुखी एवं आध्यात्मिक होने के कारण उसमें आत्मा सम्बन्धी विवेचण अधिक विशद एवं व्यापक रूप में प्राप्त होता है।

आत्मा का अस्तित्व एवं उसकी अमरता भारतीय दर्शन की महनी अवधारणा है, जिसने जनमानस को बहुत प्रभावित किया है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा ही परमात्मा है, वही सत्स है, शेष सब गौण हैं।

तमेवैकम् जानभ आत्मानम् अन्या वाचो विमु×चथ।[11]

एक आत्मा को जानने से सबकुछ जाना जा सकता हैं, क्योंकि ये सब लोक, सब देव और सब प्राणी आत्मा ही है। अतः उसी आत्मतम्व को देखना, सुनना, मानना और समझना चाहिये। भारतीय दर्शन का उद्घोष हैं.....

आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः स्त्रोतव्यो मन्तर्थः निदिध्यासितव्यः।[12]

भारतीय दार्शनिक चिन्तन का एक प्रमुख सम्प्रत्यय ब्रह्म है जिसमें भारतीय दार्शनिक चिन्तन का सार अनुस्युत है। यह ब्रह्म सर्वोच्च, सत्य एवं सर्वव्यापक तत्त्व का सूचक हैं।

सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म! से लेकर! अहम् ब्रह्मास्मी! तक समस्त विश्व में एक सार्वभौम सत्ता का दर्शन एवं अपने आपको उसी सत्ता का एक निदर्शन मानना ब्रह्मतत्व चिन्तन का आधार हैं यह समस्त जगत उसी ब्रह्म तत्व का प्रकाशन हैं ज्यो निर्विशेष, निर्द्वन्द्व, निराकार तथा परिमित है। उपनिषद् ग्रंथ नेति, नेति! कहकर उसका वर्णन करते हैं क्योंकि वह ब्रह्म स्वरूपतः अनिर्वचनीय है ब्रह्म हि एक मात्र सत् तत्त्व कालसापेक्ष तथा स्थान सापेक्ष होने से मिथ्या है यही। ब्रह्मसत्यम् जमन्मीध्या का वास्तविक आशय है। ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप का

व्याख्यान करने वाले बादरायण व्यास के ब्रह्म तत्त्व से हआ है। यथा....अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।

धर्म सृष्टि का वह मूल सिद्धान्त जिसके कारण प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति अपने स्वरूप में अवस्थित है।

'धारणाद्ध धर्म इत्याहुः'। इस दृष्टि से धर्म वैश्विक व्यवस्था का आधार है।

तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। [13]

धर्म की विविध व्याख्यायें की गई हैं, तद्यथा मानव जीवन के चार पुरषार्थोः में से प्रथम धर्म है, कार्य ही धर्म है, गुण धर्म है, शुभ कर्म का फल धर्म है, आदि–आदि, भारतीय दार्शनिक चिन्तन–धारा के दो सिद्धान्त, पूर्वमीमांसा और वैशेषिक दोनों ही धर्म की जिज्ञासा से ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं। यथा–

अथातो धर्मजिज्ञासा।
चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।[14]
अथातो धर्मम् व्याख्यास्यामः।
यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।[15]

भारतीय दर्शन में शब्द तत्त्व का विश्लेषण अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक किया गया है, क्योंकि भारतीय परम्परा वाचिक परम्परा हैं, जिसमें शब्द, स्त्रुती, भाषा अथवा वाक् बहुत महत्त्व प्राप्त है। भारतीय दार्शनिक चिन्तन में वाक् को अथवा भाषा की अन्तर्निहित शक्ति एक दैवी प्रकल्प माना गया है। ऋग्वेद के प्रसिद्ध वाक्सूक्त में वाक् को सर्जिका, प्रेरिका, पालिका और संहारिका शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है–

अहम् केतुरहम् मूर्धा अहम्र्ु विवाचनी।[16]

यह समस्त दृश्यमान् जगत् इसी वाक्तत्व से उद्भूत है।

वाचो वा इदम् सर्वम् प्रभवति।[17]

भारतीय दार्शनिक चिन्तन में सत्य का वाचिक रूप ही आचरण में अभिव्यक्त होता है, वस्तुतः सत्य की प्रतिष्ठा ही वाणी की गरिमा है, क्योंकि सत्यशोधित व्यावहार की महिमा भारतीय जनमानस में उदात्त जीवन मूल्य के रूप में स्वीकार की गई है।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन में तर्क को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं, क्योंकि निरुक्तकार महर्षि यास्क ने तो तर्क को भी ऋषि के समकक्ष पदवी प्रदान की है।
यथा–

मनुष्या वा ऋषिषुतक्रामत्सु, देवानबुवन्
को न र्ध्माविष्यतीति।
तेभ्यः येतम् तर्कम् ऋषम् प्रयच्छन्।
यदेव किःयानूयानोऽभ्यूहति, आर्ष तद् भवति।।[18]

अर्थात् जब ऋषि परम्परा उत्क्रान्त होने लगी, तब मनुष्यों ने देवों से पूछा की अब हमारा ऋषि कौन होगा? उस समय देवे ने मनुष्यों को तर्क ऋषि प्रदान किया और कहा कि विचारशील विद्वान तर्क द्वारा जिस निर्णय पर पहुँचते हैं, उसे आर्ष या ऋषिसम्मत ही मानना चाहिये। जो तर्क के द्वारा धर्म की परीक्षा करता है, वस्तुतः वही धर्म को जानता है, दूसरा नहीं।

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म वेद नेतरः।[19]

न्यायदर्शन में तर्क के साथ–साथ दृष्टान्त को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं। दुष्टान्त को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

लौकिकपरिक्षकाणाम यस्मीन्नर्थे बुद्धिसाम्यम् स दृष्टातः।[20]

अर्थात् जिसके विषय में लौकिक जनों एवं परीक्षक विद्वानों के विचारों में परस्पर विरोध न हो, वही दृष्टान्त है। स्पष्टतः इस परिभाषा में जनमानस एवं दार्शनिक विचारों के मध्य सामंजस्य सूचित होता है।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन में योग का अतीव व्यापक प्रभाव हैं, हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिक्ख, मुस्लिम और ईसाई सभी धर्मानुयायियों में योग का प्रचार प्रसार दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिगृह आज भी भारतीय जनजीवन की पहचान है।
यथा–

अहिंसा परमो धर्मः।
नही सत्यातपरो धर्मः।
अधिकम योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।
ब्रह्मचरणि तपसा देवा मृत्युपाध्नोत।

आज भी अधिकांश भारतीयों की जीवनचर्या में ये सद्गुण रचे–बसे हैं। वस्तुतः योग भारतीय संस्कृति का अविभाज्य अंग है।

'युजिर्योगे' या 'युज्य समाधौप' से निष्पन्न यह शब्द पातञ्जल योग शास्त्र के साथ–साथ आत्मा व परमात्मा के सम्मिलन को भी सूचित करता है, इसे ही कठोपनिषद् में अध्यात्मयोग कहा गया है।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवम् मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।
कठोपनिषद्

भारतीय तत्व दर्शन के अनुसार नारी नर का अर्धांश है, शतपथ ब्राह्मण में नर ओर नारी को एक ही दाल के दो दानों के सदृश बताया गया हैं।

तस्माद् अर्धम् वृगलमिव स्वः इति स्माह याज्ञवल्क्यः।[21]

भारतीय चिन्तन में नारी की तात्विक स्थिति सर्वथा नर के समकक्ष मानी गई है, वैदिक वाङ्मय में नारी की उदात्त महिमा का चित्रन अत्यन्त स्पृहणीय है, तद्यथा–

स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।[22]

निष्कर्ष रूपेण कहा जा सकता है, कि भारतीय जनमानस आज भी उसी सनातन सत्य की खोज में व्यग्र है, ज्यो भारतीय दार्शनिक चिन्तन का प्रतिपाद्य है एवं स्वरूपतः अक्षय, अनन्त तथा असीम है। यही कारन है कि–

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतीर्गमय।
मृत्यो र्माऽमृत्यम् गमय।[23]

इस प्रकार की प्रार्थनाये आज भी कोटि–कोटि भारतीय जनता का जीवन–सम्बल हैं। जब तक भारत की यह खोज जारी रहेगी। तब तक भारतीय दार्शनिक चिन्तन और जनमानस के मध्य संनिविष्ट सनातन सम्बन्ध अक्षुण्ण रहेगा और प्रातःकाल उदित होते हुये सूर्य का प्रोज्जवल प्रकाश भारतीय जनमानस को इस शाश्वत प्राणदायिनी पतित पावनी गायत्री का गान करने के लिये प्रेरित करता रहेगा।

ओम् भू–र्भुवः स्वः,
तत्सवितुर्वरेण्यम्।
भर्गो देवस्य धीमहि,

धियो यो नः प्रचोदयात्।।

अध्ययन का उद्देश्य

1. भारतीय दर्शन से अनभिज्ञ जन को दार्शनिक सिद्धान्तों से परिचय कराना।
2. भारतीय जनमानस एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के मध्य सामन्जस्य को रेखांकित करना।
3. वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति का प्रचास एवं प्रसार करना।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूपेण कहा जा सकता है, कि भारतीय जनमानस आज भी उसी सनातन सत्य की खोज में व्यग्र है, ज्यो भारतीय दार्शनिक चिन्तन का प्रतिपाद्य है एवं स्वरूपतः अक्षय, अनन्त तथा असीम है। यही कारन है कि–

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतीर्गमय।
मृत्यो र्माऽमृत्यम् गमय।23

इस प्रकार की प्रार्थनाये आज भी कोटि–कोटि भारतीय जनता का जीवन–सम्बल हैं। जब तक भारत की यह खोज जारी रहेगी। तब तक भारतीय दार्शनिक चिन्तन और जनमानस के मध्य संनिविष्ट सनातन सम्बन्ध अक्षुण्ण रहेगा और प्रातःकाल उदित होते हुये सूर्य का प्रोज्जवल प्रकाश भारतीय जनमानस को इस शाश्वत प्राणदायिनी पतित पावनी गायत्री का गान करने के लिये प्रेरित करता रहेगा।

ओम् भू–र्भुवः स्वः,
तत्सवितुर्वरैण्यम्।
भर्गो देवस्य धीमहि,
धियो यो नः प्रचोदयात्।।

अंत टिप्पणी

1. *ऋग्वेद–10/53/8*
2. *ऋग्वेद–10/13/1*
3. *यजुर्वेद–35/7*
4. *अर्थववेद–11/1/22*
5. *अर्थववेद–10/2/31*
6. *सांख्यामन आरण्यक–8/9*
7. *यजुर्वेद–29/43*
8. *स्वेता स्वतर उपनिषद्–1/1/1*
9. *मुण्डकोपनिषद्–3/6*
10. *ईशोपनिषद्–1/1*
11. *मुण्डकोपनिषद्–2/5*
12. *बृद्धारण्यकोपनिषद्–2/4/5*
13. *ऋग्वेद–10/90/16*
14. *जैमिनीसूत्र–1/1/1–2*
15. *वैशेषिकसूत्र–1/1/1–2*
16. *ऋग्वेद–10/159/5*
17. *शतपथ ब्राह्मण–1/3/2/16*
18. *निरक्त–13/12*
19. *मनुस्मृति–12/106*
20. *न्यायसूत्र–1/1/25*
21. *शतपथ–14/4/2/4/*
22. *ऋग्वेद–8/33/19*
23. *बृहदारण्यक–1/3/28*

सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

1. *ऋग्वेद दशम मण्डल 53वां सूक्त आठवां मंत्र, प्रकाशक – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 885*
2. *ऋग्वेद दशम मण्डल 13वां सूक्त प्रथम मंत्र, प्रकाशक – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी पृसं. 415*
3. *यजुर्वेद 35वां अध्याय मंत्र संख्या 7, प्रकाशक – मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। पृ.सं. 900*
4. *अथर्ववेद – ग्यारहवां अध्याय पहला सूक्त 22वाँ मंत्र, प्रकाशक विद्यानिधी प्रकाशन, दिल्ली। पृ.सं. 1575*
5. *अथर्ववेद – दसवां अध्याय दूसरा सूक्त 31वाँ मंत्र, प्रकाशक विद्यानिधी प्रकाशक, दिल्ली। पृ.सं. 1405*
6. *सांख्यायन आरण्यक आठवां अध्याय नवाँ मंत्र, प्रकाशक – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 995*
7. *यजुर्वेद 29वां अध्याय मंत्र संख्या 43, प्रकाशक – मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। पृ.सं. 855*
8. *स्वेता स्वतर उपनिषद् पहला अध्याय, प्रथम मंत्र, गीता प्रेस गोरखपुर पृ. सं. 21*
9. *मुण्डकोपनिषद्– तीसरा अध्याय छठा मंत्र, प्रकाशक – सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी। पृ.सं. 1225*
10. *ईशोपनिषद् पहला अध्याय, प्रथम मंत्र, गीता प्रेस गोरखपुर पृ. सं. 11*
11. *निरूक्त 13वां अध्याय 12वाँ मंत्र, लेखक – यास्क, प्रकाशक – कुरूक्षेत्र विश्वद्यिवद्यालय, हरियाणा अनुवादक – कपिलदेव शास्त्री। पृ.सं. 925*